Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 12, December-2018, ISSN 2230-7540

अहीरवाल के संत महात्मा

Dr. Manjusha*

Assistant Lecturer in Hindi, Shri Durga Mahila College, Tohana

सार – ***हरियाणा के दक्षिणी भाग को सामान्यतः 'अहीरवाल' कहा जाता है। अहीरों (यादवों) का बाहुल्य होने के कारण इस अंचल का नाम अहीरवाल पड़ा। इतिहासकार डॉ. के.सी. यादव ने इस अंचल का परिचय देते हुए कहा है- हरियाणा प्रांत के अंतर्गत गुडगाँव जिले के उत्तरी तथा पश्चिमी भाग, रोहतक जिले की झज्जर तहसील तथा हिसार व भिवानी जिले के कुछ भाग तथा राजस्थान की बहरोड़, मुंडावर, बानसूर तहसील और कोटकासिम के परगने को 'अहीरवाल' के नाम से पुकारा जाता है।1 इस अंचल के प्रसिद्ध लोककवि कल्लू भाट ने इस अंचल को 'देवता का देस बास' अर्थात् 'अहीरवाल' देवी-देवताओं और संतों की भूमि है। इस अंचल में अनेक संत-महात्मा हुए हैं, जिन्होंने भक्ति मंदाकिनी की धवल धारा बहा दी है तथा इस अंचल के लोगों के हृदय में भक्ति भाव का बीजारोपण किया है।***

----------X----------

संत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य चतुर्वेदी के अनुसार- 'संत' शब्द उस व्यक्ति का बोध कराता है जिसने 'सत' रूपी परम तत्त्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो।2

'अहीरवाल' अंचल में अनेक संत-महात्माओं ने जन्म लेकर ज्ञान, भक्ति व अध्यात्म की त्रिवेणी प्रवाहित की है। इस अंचल के संत महात्माओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

संत नितानंद

संवत् 1780 में हरियाणा प्रांत के महेन्द्रगढ़ जिले के सुप्रसिद्ध नगर नारनौल में जन्मे संत नितानंद एक महान संत थे। उनका बचपन का नाम नन्दलाल था। प्रारंभ में वे भरतपुर रियासत के तहसीलदार के पद पर कार्य करते थे। उनके गुरु का नाम गुमानी दास था जिनकी पे्ररणा से उनहें ज्ञान-वैराग्य प्राप्त हुआ। स्वयं कवि ने एक साखी में कहा है-

टेढ़े टेढ़े चालते, टेढ़ी धरते पाग।

गुरु गुमानी दास जी, दिया ज्ञान वैराग्य।।3

स्वामी गुमानी दास ने नंदलाल के भक्तिभाव को देखकर उनका नाम 'नितानंद' रख दिया। कुछ समय तक वे स्वामी जी के पास भजन करते रहे। स्वामी जी की पे्ररणा से इन्होंने भेष (संन्यास) धारण कर लिया। कुछ समय पश्चात् दुबलधन माजरा में हीस (कांटेदार झाड़ी) के बीड़े में रहकर भजन करने लगे। संत नितानंद बहुधा शाक-पत्र आदि जंगली फल खाकर गुजारा करते थे। जब उन्हें भूख सताती तो वे आस-पास के गाँवों के सात घरों से जो भिक्षा के रूप में मिलता उसी से उदरपूर्ति करते थे। भिक्षा मांगते समय नियम के अनुसार मुख से कुछ नहीं बोले, बल्कि द्वार पर मौन खड़े रहते थे। वे स्वयं सितार बजाते और भजन गाते थे। उन्होंने अपना शरीर भादव सुदी प्रथमा संवत् 1856 (सन् 1799) को स्वेच्छा से त्यागा।

संत नितानंद की सम्पूर्ण वाणी 'सत्य सिद्धान्त प्रकाश' में संग्रहित है। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं-प्रथम भाग के 3425 साखियाँ संग्रहित हैं तथा द्वितीय भाग में ब्रह्म स्तोत्र, बारह खड़ी, गुरु वंदन, स्तोत्र तथा अन्य पद संग्रहित हैं। उनकी साखियों तथा पदों की कुल संख्या 4584 है। इसमें 3425 साखियाँ तथा 1159 पद हैं। संत नितानंद की वाणी में आध्यात्मिक तत्त्वों तथा लोकोन्मुखी विचारधारा का सुंदर समन्वय हुआ है। उन्होंने मानव-मात्र को उपदेश देते हुए कहा है कि 'यह काया बारू की भीत' के समान कच्ची है, जो कभी भी ढह सकती है। संत जी ने कहा है कि इस नर-काया पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह पलभर में राख की ढेरी हो सकती है।

नितानंद इस देही का, मुझे नहीं इतबार।

देखते ही पल मारते, मिले छार में छार।।4

www.ignited.in

संत जी ने जगत को स्वप्निल, असत्य, नश्वर, मृगतृष्णा आदि नामों से अभिहित किया है। जगत् की असारत पर विचार करते हुए वे कहते हैं-

संत रामसिंह 'अरमान':

संत रामसिंह 'अरमान' का जन्म अश्विन बदी नवमी संवत् 1952 को हिसार जिले के जूही नामक गाँव में हुआ। वे राधास्वामी पंथ के महत्त्वपूर्ण संत थे। उनके पिता का नाम बुधराम यादव था, जो सामान्य किसान थे। अल्पायु में इनका विवाह निम्बोदेवी से हुआ। उनके कुल सात संतानें हुई-दो पुत्र और पाँच पुत्रियाँ। संत जी का स्वर्गवास आश्विन कृष्ण दशमी संवत् 2032 को हुआ। संत बनने से पूर्व वे सरकारी विद्यालय में अध्यापक थे। उन्होंने जूही, मिरान, धारणवास, बुढ़ाना आदि गाँवों में अध्यापन का कार्य किया। प्रारंभिक जीवन से संत राम सिंह साधु सेवा में लीन रहते थे। उनकी इस वृत्ति से प्रभावित होकर स्वामी परमानंद ने इन्हें महर्षि शिवव्रत लाल से दीक्षा लेने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने राधास्वामी पंथ के सुप्रसिद्ध संत महर्षि शिवव्रत लाल से संत मत की दीक्षा ली और उन्हें 'अरमान' उपमान भी प्राप्त हुआ, जिसका उल्लेख उन्होंने 'अरमान सागर' में इस प्रकार किया है-

सन उन्नीस सौ बीस से करते रहे अभ्यास

श्री शिवव्रत लाल की दशा से वस्तु मिली वह खास।

अरजी मेरी सुन लई सतगुरु मेहरबान

रामसिंह से कर दिया, रामसिंह 'अरमान'।5

संत राम सिंह 'अरमान' निरन्तर संत मत के प्रचार-प्रसार में लगे रहते थे। सन् 1930 में महर्षि शिवव्रत लाल इनकी प्रगति से प्रसन्न होकर इन्हें जिला हिसार में नामदान तथा सत्संग के प्रचार का अधिकार दे दिया, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने ग्रन्थ में किया है-

दिसम्बर सन् 1930 में गया राधास्वामी धाम।

सतगुरु ने सौंपा मुझे गुरुवाई का काम।।

जिला हिसार मैंने दिया, करो संत प्रचार।

मेरी तरफ से कर दिया मैंने, मुखत्यार।।6

संत रामसिंह 'अरमान' की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं- 'अरमान सागर' और 'अरमान रामायण'। उन्होंने रामायण की रचना जनसाधारण के लिए थी। इस रामायण में सात कांड हैं। रामायण का प्रारम्भ निम्न पंक्तियों से होता है-

उत्तर भारत में बसे नगर अयोध्या जान।

नृप दशरथ का राज था रघुकुल वीर महान।।

उनके रानी तीन थी बड़ी कौशल्या जान।

सुमित्रा, छोटी कैकेयी, तीनों चतुर सुजान।।7

संत 'अरमान' ने सतनाम की महिमा का प्रचार-प्रसार किया है। 'सतनाम', 'सत्पुरुष' एक ही वस्तु है। अंतर की ध्वनि अनहद नाद है, जिसे साधक अभ्यास से सुन सकता है। 'सुरत' शब्द के अनुसार सतनाम की प्राप्ति होती है। यही अजपा जाप है। इसी से बाहर भीतर उजियारा होता है।

सतनाम सतपुरुष का सतलोक प्रवेश।

चेतन ही चेतन वहाँ, चेतन रहे हमेश।

सतनाम सतपुरुष का, सतलोक में वास।

शब्दयोग से रामसिंह, होता है प्रकाश।।8

बाबा जयरामदास:

तपोनिष्ठ बाबा जयरामदास का जन्म संवत् 1995 (सन् 1858) में महेन्द्रगढ़ जिला के 'पाली' नामक ग्राम में स्योजी सिंह के घर हुआ। कहावत प्रसिद्ध है कि 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' यह बाबा जयरामदास पर खरी उतरती है। बचपन में उनका डीलडोल भारी भरकम था।

आषाढ़ के महीने में युवक जयरामदास हल जोत रहे थे तभी किसी मूल में हल की कुश फंसते ही उस कमजोर ऊँटनी ने दर्द भरी आवाज निकाली। वही करुण ध्वनि उनके सुसुप्त परमहंस भाव को उद्वेलित कर गई। दोपहर के समय विश्राम काल में अपने साथ वालों की पलक झपकते ही युवक जयरामदास कहीं वनखंडों में जाकर ऐसे विलीन हुए कि फिर कई साल बाद सिद्धि प्राप्त परमहंस के रूप में ही प्रकट हुए। यह भी कहा जाता है कि ऊँटनी की जगह जयरामदास स्वयं हल को खींचता था। ऊँटनी पर दिया करके स्वयं अपने कंधे पर हल की हाल को रख लेता था।

कई वर्षों तक जयराम दास गायब रहे। कहा जाता है कि कई वर्षों बाद घरसू गाँव के मेले में पशुओं के व्यापारियों द्वारा

www.ignited.in

दैदीप्यमान तपस्वी महात्मा के रूप में घूमते हुए देखे गये। चारों दिशाओं में यह चर्चा होने लगी कि बाबा रामदास वाक्सिद्ध महात्मा हैं। जो वे कहते हैं वह कार्य पूरा हो जाता है। कहा जाता है कि वे अंधकार वाली कृष्णपक्ष की काली रात में, सर्प व जंगली जंतुओं से व्याप्त बंजर भूमि में नंगे पाँव विचरण करते हुए अकेले देखे गये। बाबा जयरामदास को लोककीर्ति की इच्छा नहीं थी।

बाबा रामेश्वरदास जी:

बाबा रामेश्वरदास जी का जन्म नारनौल के समीप सिरोही नामक ग्राम में ज्येष्ठ बदी चैदस, संवत् 1970 में हुआ। इनके पिता का नाम पं. बीरबलदास और माता का नाम धून्धावती था। बीरबल दास रामकथा में विशेष रुचि रखते थे। वे राम के परम उपासक थे। अतरू उन्होंने अपने नवजात शिशु का नाम राम़ईश्वर=रामेश्वर रखा। रामेश्वर बचपन से ही तेजस्वी बालक थे। बालक रामेश्वर को माता-पिता का पूरा स्नेह मिला। लेकिन उनके माँ-बाप ढाई तीन साल की अल्प बाल्यावस्था में इन्हें असहाय छोडकर स्वर्ग सिधार गये। इनका लालन-पालन इनके चाचा ने किया। जब रामेश्वर पाँच साल का हो गया तो उसे नारनौल में संस्कृत पाठशाला में भर्ती करा दिया। रामेश्वर पढ़ने में बहुत तेज था। उसके गुरु जी जो पाठ पढ़ाते थे, वह उनको उसी दिन कंठस्थ हो जाता था। गुरु जी उनकी विलक्षण बुद्धि पर हतप्रभ थे।

नारनौल से पश्चिम दिशा में ढोसी का पहाड़ है। यहाँ महर्षि च्यवन ने तपस्या की थी। यहाँ एक संस्कृत पाठशाला भी थी। इस पाठशाला के आचार्य री नंद जी महाराज नारनौल आए। वे यहाँ की संस्कृति पाठशाला भी देखने आये। बालक रामेश्वर के तेज को देखकर हतप्रभ रह गये। नंद जी ने नारनौल के प्राचार्य से अनुनय विनय करके बालक रामेश्वर को अपने साथ ले गये। श्री नंद जी महाराज बालक रामेश्वर को लेकर ढोसी पहुँचे तो वहाँ की पाठशाला के अन्य बालक बहुत प्रसन्न हुए। श्री नंद जी ने बालक रामेश्वर को अपना शिष्य बना लिया और इनका नाम रामेश्वरानन्द रख दिया। लेकिन सामान्यजन उन्हें रामेश्वर दास ही कहते थे। श्री नंद जी ने आश्रम का सारा काम-काज रामेश्वर दास को ही सौंप दिया गया। रामेश्वर जी को जब भी समय मिलता तो सलेट पर 'राम' ही लिखता रहता था। रामनाम की धुन बड़े पे्रम से लगाता था।

श्री बाबा नंद इलाके के प्रतिष्ठित संत थे। मंदिर की आमदनी और ख्याति पूरे इलाके में थी। इस ख्याति को सुनकर डाकुओं ने इस स्थान पर हमला कर दिया और सब धनराशि लूटकर ले गये। कुछ समय पश्चात् नंद जी भी ब्रह्मलीन हो गये। बाबा रामेश्वरदास को इस घटना से वैराग्य हो गया और उन्होंने गद्दी को स्वीकार नहीं किया। वैराग्य की अवस्था में रामेश्वर जी अनेक तीर्थ और जंगलों में भ्रमण करते रहे। जिस गाँव में रात को ठहरते थे व रामधुन लगाते थे, उस रामधुन में गाँव के सभी नर-नारी भाग लेते थे। रात भर 'श्रीराम जय जय राम, जै जै राम' की धुन लगी रहती थी। प्रसाद बांट कर बाबा चले जाते थे। इस प्रकार सारे इलाके में बाबा की रामधुन का प्रसार था। बाबा जी रमता राम थे। कुछ दिन बाबा जी नीम का थाना के पास वीरान जंगल में पहाडियों की खोल में बने मनसा देवी के मंदिर में रहे। कारोली मारोली के मंदिर में भी वे कई वर्षों तक रहे। इसके बाद वे बिघोपुर के मंदिर में भी रहे। वहाँ से खिन्न होकर उस स्थान को तयाग कर चल पड़े।

बाबा मोहनदास:

बाबा मोहनदास का जन्म सन् 1500 के आसपास रेवाड़ी से 20 किलोमीटर दूर गाँव भाखली माजरा के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। वह बचपन में गाँव की वनस्थली में गायें चराते थे। कहा जाता है कि उनकी गायों के साथ दो अजनबी गायें भी चरने आती थीं। उन गऊओं को आते-आते कई मास व्यतीत हो गये। एक दिन सायंकाल उन गऊओं का पता लगाने हेतु स्वामी जी उन गायों के पीछे-पीछे चल पड़े। वे दोनों गांए नांधा गाँव के पहाड़ की एक गुफा में चली गईं। मोहनदास उनके साथ गुफा में प्रविष्ट हो गये। वहाँ जाकर देखते हैं कि एक योगी महात्मा अपने धूने के पास ध्यानमग्न बैठे हैं। उन महात्मा ने अचानक अपनी आँखें खोलीं और मोहनदास से कहने लगे कि बीत (चरवाही) लेने आये हो। उन्होंने चुटकी भर भभूत मोहनदास के हाथ पर रखकर बोले कि घर जाकर इसे अपने अन्न भण्डार में रखकर ताला लगा देना और फिर किसी छिद्र में से आवश्यकतानुसार अन्न लेते रहना। मोहनदास ने भभूत अपने पल्ले में बांध ली और घर लौटकर सारा वृत्तांत अपनी माता को सुनाया और भभूत उन्हें सौंप दी। माता ने स्वामी जी के निर्देशानुसार सब व्यवस्था कर दी और इस प्रकार उनके वारे-न्यारे हो गये।

शीघ्र ही यह बात आस-पड़ोस में फैल गई और फिर पड़ोसियों के आग्रह पर माता ने एक दिन भण्डार का द्वार उनके समक्ष खोल दिया। लेकिन अब वही भंडार राख से भरा हुआ था। इससे मोहनदास की माता को गहरा आघात लगा और दोबारा मोहनदास को गुफा में भेजकर महात्मा जी से पुनः वही भभूत लाने को कहा। लेकिन अबकी बार मोहनदास को भभूत ने देकर 'वाक् सिद्धि' का वरदान दे डाला।

बाबा मोहनदास की समझ में कुछ भी नहीं आया। वे निराश होकर घर लौट आए। घर पहुंचने पर माता ने पूछा तो मोहनदास के मुख से सहसा से शब्द निकल पड़े कि माता तुम अपने अन्न भण्डार का द्वार खोलकर दिखाने से पूर्व तुम मर क्यों नहीं गई? जनश्रुति है कि इन शब्दों के उच्चारित होते ही माता स्वर्ग सिधार गई। इस प्रकार वचन सिद्धि मोहनदास के लिए वैराग्य एवं भक्ति का महाद्वार खुल गया। घर-बार छोड़कर वह भड़ावास चले आए और यहाँ गहन वन में हींस के वृक्ष के नीचे धूना रमा दिया। अत्यन्त कठोर तपस्या के बाद उनहें दिव्य-ज्योति प्राप्त हुई। धीरे-धीरे उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। अब वे जन-जन के आराध्य देव बन चुके थे। भाड़ावास की इस तपस्थली ने मंदिर का रूप ले लिया।

बाबा खेतानाथ:

बाबा खेतानाथ का जन्म नारनौल के उत्तर में 17 किलोमीटर की दूरी पर 'सीहमा' नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम रामसिंह तथा माता का नाम मीनीदेवी था। स्वामी जी का जन्म कार्तिक सुदी अष्टमी संवत् 1973 (सन् 1916) को हुआ। खेत में जन्म होने के कारण उनका नाम 'खेतानाथ' रखा गया। बड़े लाड़ दुलार से बालक खेतानाथ का लालन-पालन हुआ। खेतानाथ जी चार भाई थे, जिनका नाम क्रमशरू सुल्तान, घड़साराम, खेताराम और चन्दर था। फलकोरी और मूर्ति नाम की दो बहनें थीं। उन्होंने कई वर्षों तक खारी बणी में गायें चराईं। किन्तु, उनमें साधुत्व के लक्षण दिखाई देने लग गये थे। किशोर अवस्था में ही वे संयम, स्व अनुशासन, पे्रम तथा शांतभाव से रहते थे। उन्हें आर्य समाज के भजन सुनने का बड़ा शौक था। बड़ों का आदर सम्मान करते थे और अपने साथियों की टोली का नेतृत्व करते थे। स्वामी जी शिक्षा-दीक्षा सीहमा की चटशाला में हुई। चटशाला के पंडित जी ने स्वामी जी को हिन्दी और अंकगणित का बोध कराया।

सन् 1932 में उन्होंने घर त्याग दिया। कुछ दिन वे बिजोरावास (बहरोड़) के जोहड़ में ठहरे। सन् 1934 में भगवत भक्ति आश्रम, रामपुरा (रेवाड़ी) में जाकर ठहरे। इस आश्रम के स्वामी परमानंद का शरीर पूरा होने पर खेतानाथ जी ने आश्रम छोड़ दिया। सन् 1936 में वे बाबा मस्तनाथ आश्रम, अस्थल बोहर, रोहतक पहुँचे। इस आश्रम में बाबा खेतानाथ को यहाँ विधिवत नाथ सम्प्रदाय की दीक्षा दी। स्वामी जी को पढने-लिखने का बड़ा शौक था। वे संस्कृत का अध्ययन करने के लिए मायापुर आश्रम, हरिद्वार गये। इसके पश्चात् 25 वर्ष की अवस्था में भाटोटा (नारनौल) की धर्मशाला में रहने लगे। उन्होंने तीर्थनाथ वैद्य से जड़ी-बूटियों का ज्ञान प्राप्त किया।

जब देश में राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था, उस समय संत जी ने इसमें सक्रिय भाग लिया। सन् 1946 में प्रजामंडल के कार्यकलापों को विशेष गति दी। कई बार जेलों में रहे और कठोर यातनाएँ सहन कीं। देश की स्वतंत्रता के बाद वे पूर्ण रूप से आध्यात्मिकता से जुड़ गये। इसके बाद उड़ीसा की राजधानी कटक गये और वहाँ से समाज-सेवा का व्रत लिया। सन् 1950 में कनीना के पास पाथोड़ा धणौदा के टीलों में आसन जमाया। दडौली में 19 दिन बालूरेत के टीले पर तपे। बीजवाड़ चैहान के टीलों पर भी तपस्या की। उस समय आकाश ओढना और बालू रेत का बिछौना था।

निष्कर्षतरू कहा जा सकता है कि अहीरवाल के संतों की देन अप्रतिम है। इन संतों ने सामाजिक आदर्श और सांस्कृतिक समन्वय की विराट चेष्टा की है। इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में 'सर्वधर्म समभाव' की भावना देखी जा सकती हैं। इन संतों ने पाखंड और अंधविश्वासों का खंडन करके मिथ्याडम्बरों से दूर रहने का उपदेश दिया है। एकेश्वरवाद, सदाचार, सत्य, समता और शाश्वत धर्म का आदर्श प्रस्तुत करके उन्होंने सामाजिक जागरण का शंख निनाद किया है।

संदर्भ

1. डॉ. के.सी. यादव, अहीरवाल का इतिहास, पृ. 3
2. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ. 5
3. नितानंद, सत्यसिद्धान्त प्रकाश, पृ. 3
4. वही, पृ. 103
5. रामसिंह अरमान, अरमान सागर, पृ. 53
6. वही, पृ. 57
7. रामसिंह अरमान, अरमान रामायण, पृ. 3
8. वही, पृ. 8

Corresponding Author

Dr. Manjusha*

Assistant Lecturer in Hindi, Shri Durga Mahila College, Tohana

www.ignited.in